Chap-3

तृतीय अध्याय

साठोत्तरी हिन्दी साहित्य की समकालीन परिस्थितियाँ

साठोत्तरी हिन्दी साहित्य की समकालीन परिस्थितियाँ --

किसी भी युग का साहित्य अपने समकालीन परिवेश से प्रभावित एवं प्रेरित होता है। समकालीन परिस्थितियों के बीच जीता हुआ साहित्यकार, जनसाधारण की सम्वेदना को आत्मसात कर अपनी रचना द्वारा उसे साकार करता है। अत: युगीन परिवेश का, साहित्य के निर्माण में महत्त्वपूर्ण योगदान रहता है।

साठोत्तरी हिन्दी साहित्य के अध्ययन के लिए जरूरी है कि उस युग की परिस्थितियों का हमें सम्यक् परिचय हो। अत:इस अध्याय में सन् १९६०ई० के बाद प्रवर्तमान देश की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों का अध्ययन प्रस्तुत है--

i) सामाजिक परिस्थिति ---

भारत की प्राचीन सामाजिक व्यवस्था अपने मूल रूप में चतुष्वर्णीय थी, जो मध्यकाल तक आते-आते अनेकानेक कारणो से विकृत होकर अनेकानेक जातियों में विभाजित हो गई थी। जिससे जातिभेद की सामाजिक समस्या जटिल हो चली थी। विदेशी जातियों का समाज में समन्वय,विभिन्न जातियों का परस्पर आंतरजातिय विवाह, अनेकानेक धार्मिक संप्रदायो का प्रचलन एवं उसका सामाजिक प्रभाव, व्यवसायिक संगठन एवं उद्योग-धन्धो के विकास आदि के कारण भारतीय समाज में अगणित नयी जातियाँ एवं उपजातियाँ लगभग मध्यकाल से ही अस्तित्व में आकर विकसित हो चली थी।[1]मध्यकाल में धार्मिक संघर्ष एवं बलात् धर्मपरिवर्तन ने भारत की सामाजिक व्यवस्था में जो विष घोल दिया था उसके दुष्परिणाम स्वरूप सामाजिक व्यवस्था में आयी विकृतियाँ अधिक जटिल और कठोर बन गई थी। लगभग आधुनिक काल तक यह परिस्थिति प्रवर्तमान रही।

अंग्रेजी शासन के दीर्धकालीन सम्पर्क के परिणाम स्वरूप देश के सामाजिक ढाँचे में परिवर्तन की एक नयी लहर सी दौड़ गई। देश के स्वतन्त्रता आन्दोलन के एक अंग के रूप में सामाजिक सुधार की क्रांतिकारी प्रवृति चल पड़ी।आर्यसमाज, ब्रह्मसमाज, थीयोसोफिकल सोसायटी आदि ने समाज सुधार में युगान्तकारी क़ार्य किया। गॉधीजी की मानवतावादी भावना, हरिजन उद्धार तथा ऊँच-नीच की भावना का विरोध जैसी विचारधारा का जनता पर काफी प्रभाव पड़ा।[2]समाज को विघटित, कुरूप एवं विषाकत

बनाने वाले तत्वों को दूर करके लोकमानस में जागृति लाने के लिए गाँधीजी, रवीन्द्रनाथ टैगोर, राजा राममोहन राय, स्वामी दयानंद,लोकमान्य तिलक, डॉ० आंबेडकर आदि देशभक्तो ने अथक प्रयत्न किये। परिणाम स्वरूप स्वातंत्र्य प्राप्ति के पश्चात देश की सामाजिक परिस्थिति में सुधार के कतिपय लक्षण दिखाई देने लगे। लोकतंत्र की स्थाप्ना के पश्चात देश में संगठित सामाजिक व्यवस्था के लिए जिन तत्वों पर सरकार और समाज-सेवियों ने ध्यान दिया वे हैं --- शिक्षा व्यवस्था, प्रौढ शिक्षण, वर्गभेद की नाबूदी, समान मानवीय अधिकारो का आग्रह,निम्न एवं ग्रामीण लोक-मानस में जागृति लाने का यत्न,शोषण और भ्रष्टाचार को नष्ट करके समाज में उपेक्षित,पीड़ित, दमित, दु:खी और अभावग्रस्त लोगों को ऊपर उठाने का यत्न, नारी-शिक्षा, समाज में नारी के प्रति उदात्त दृष्टिकोण तथा समान रूप से नारियों को मानवीय अधिकार की प्राप्ति आदि सामाजिक सुधार के प्रमुख पक्ष थे।

पाश्चात्य देशों के औद्योगिकरण की परिस्थितियों से जिन समाजवादी और साम्यवादी विचारधाराओं का विश्व भरके श्रमिक वर्ग में प्रभाव बढ़ा,इससे भारत भी अछूता न रहा।सूदखोरो,महाजनो और उद्योगपतियों के आर्थिक शोषण से बचाव के लिए अनेक संगठित संस्थाएँ अस्तित्व में आयीं, ये विपन्न और समाज में दमित लोगों के अधिकारों के लिए उन्हें जागृत करती और संगठित रूप से संघर्षरत रहती।

समकालीन सामाजिक परिवेश में शिक्षा के प्रचार-प्रसार, विदेशी जातियों के सम्पर्क तथा नये आविष्कारों से उभरती वैज्ञानिक नई चेतना के परिणाम स्वरूप समाज में जो मध्यमवर्ग अस्तित्व में आया था, उसकी संख्या मे दिन-प्रतिदिन वृद्धि होती गई। इस वर्ग के अस्तित्व से समाज में शिक्षित बुद्धिवादी वर्ग का वर्चस्व बढ़ने लगा,साथ ही उन्नति की होड,साधनों की विपन्नता, व्यवस्था के प्रति आक्रोश,पीढ़ीयों का संघर्ष आदि समस्याएें विशेष रूप से मध्यमवर्ग में पनपने लगी। आर्थिक विषमता के कारण इस वर्ग की स्त्रियों ने अपने बौद्धिक विकास के लिए उच्च शिक्षा प्राप्ति की ओर अपने कदम आगे बढ़ाये तथा घर की चार दिवारों को लांघकर अपने नये कार्यक्षेत्र तलाश लिये।समाज और देश के विभिन्न क्षेत्रों में नारियों ने अपना महत्त्वपूर्ण योगदान प्रदान करते हुए अपनी क्षमता, निष्ठा, दृढ़ता आदि का परिचय दिया। कहा जाता है कि सन् १९७७ ई० तक प्राय: पचीस लाख महिलाएँ देश भर में विभिन्न रोजगारों में लगी हुई थी। [3] कहना न होगा कि समकालीन सामाजिक परिवेश में इन महिलाओं की अनेकानेक समस्याओं ने देश में सामाजिक,सांस्कृतिक संकट का रूप धारण किया है।फेशन परस्ती, पश्चिमी

संस्कृति का प्रभाव,भोगवादी मनोवृत्तियॉ,सहशिक्षण में व्याप्त स्वच्छन्दता आदि के कारण बलात्कार,वेश्यावृत्ति जैसी समस्याएँ समाज के लिए घातक सिद्ध हो रही है।आज के मध्यमवर्ग की अपनी पृथक समस्याएँ हैं। उच्चवर्ग के रहन-सहन का अन्धानुकरण करते हुए 'बड़ा'बनने की होड़ में मानव अपने ही परिवेश से कटता जा रहा है। बेरोजगारी, जीविकोपार्जन के लिए संघर्ष,पारिवारिक विघटन, सम्बन्ध विच्छेद, भोगवादी दृष्टिकोण, मानसिक संत्रास एंव अकेलेपन की कुंठाएँ आदि इस युग की प्रमुख सामाजिक समस्याएँ हैं।

नगरीय जीवन और ग्रामीण जीवन के बीच का अन्तर अब एक सीमा तक समाप्त सा हो गया है। तथापि गाँवों में वर्ग-भेद, छुआ-छूत, हरिजनो एवं दलितों पर अत्याचार, आर्थिक शोषण आदि सामाजिक समस्याएँ आज भी कुछ हद तक विद्यमान है।

ii) आर्थिक परिस्थिति --

स्वराज्य-प्राप्ति के साथ देश की प्रमुख समस्या थी आर्थिक रूप से स्वावलम्बी और आत्मनिर्भर होने की। अंग्रेजी-शासन के दरम्यान विदेशी पूँजीपतियों द्वारा देश को ऐसा दरिद्र बना दिया था कि कई सालो तक सरकार की अनेकानेक योजनाएँ भी आर्थिक संकट से बचाने में असफल रही। अंग्रेजो की स्वार्थपूर्ण नीतियाँ, दो-दो विश्व युद्ध का आर्थिक बोझ, बंगाल के भयंकर अकाल जैसे प्राकृतिक प्रकोप, लघु उद्योग-धन्धो की विनाशक अवस्था आदि के कारण स्वतन्त्रता-प्राप्ति के समय भारत आर्थिक रूप से अत्यन्त पिछड़ा हुआ देश था।देश की अधिकांश जनता भूखी और नंगी थी।जीवन की प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उन्हें जीवनभर जूझना पड़ता था।

पंडित जवाहरलाल नेहरू के नेतृत्व में काँग्रेस सरकार ने अनेक पंचवर्षीय योजनाओं द्वारा देश के कृषि-उत्पादन में चमत्कारिक परिणाम प्रस्तुत किये। किसानों को दी गई आर्थिक सहायता,कृषि उत्पादन को आयकर से मुक्ति,ज़मीन सुधार कानून नियमन आदि सरकारी नीतियों द्वारा सरकार ने कृषि-विकास को अत्याधिक प्रोत्साहित किया। श्री लालबहादुर शास्त्री ने 'जय जवान जय किसान' जैसा नारा देकर देश के किसानों की महत्ता को बढ़ाया। इस प्रकार पिछड़े हुए किसानों की आर्थिक स्थिति को सुधारने का यत्न, देश की आर्थिक नीति का प्रमुख उद्देश्य था। पंचवर्षीय योजनाओं द्वारा कृषि उत्पादन में वृद्धि के अतिरिक्त उद्योग- धन्धो का विकास,यातायात के साधन एवं संचार माध्यमों का विकास आदि द्वारा शनै: शनै: देश में एक प्रकार की आर्थिक दृढ़ता

का विकास हुआ। श्रीमती इन्दिरा गाँधी ने बैंको के राष्ट्रीकरण द्वारा देश की आर्थिक दशा में सुधार लाने का यत्न किया। गरीबों एवं मध्यमवर्गीय लोगों की आर्थिक सुधार की स्थिति को ध्यान में रखकर समाज के पूंजीपतियों,सूदखोरो,महाजनों एवं साहुकारों के वर्चस्व को नष्ट करने का यत्न सरकारी प्रयत्नो से हुआ। विदेशी सहायता द्वारा लोगों के जीवन-स्तर को ऊपर उठाने का यत्न किया गया। इन सब प्रयत्नों के बावजूद भी स्वतन्त्रता प्राप्ति के पचास साल बाद भी निम्न एवं मध्यमवर्ग की स्थिति उतनी सुखद और समृद्ध नहीं हो पायी जितनी योजनाओं के आयोजन से आशा की गई थी। देश, विदेशी कर्जों के बोझ तले दिन-प्रतिदिन दबता गया ।

शीघ्रता से बढ़ती हुई देश की जन-संख्या, पड़ोसी देशों द्वारा हुए आक्रमण से उत्पन्न युद्ध की परिस्थितियाँ,अनेक राज्यों में आयी प्राकृतिक आपदाएँ,उत्पादन के क्षेत्र में पूँजीपतियों का एकाधिकार,सरकारी क्षेत्रों में फैला भ्रष्टाचार,काले-धन की हेरा-फेरी, सरकारों के शीघ्र पतन एवं समर्थ नेतृत्व के अभाव से उत्पन्न राजनीतिक संकट के दुष्परिणाम,बढ़ती हुई शहरीकरण की संख्या आदि के कारण आज भी देश की आर्थिक दशा पूर्णतः सुदृढ़ नहीं हो पायी है।

कृषि उत्पादन में आशानुकूल सफलता,इस्पात-लोहे जैसे व्यापारों में अप्रत्याशित रूप से हुई वृद्धि, खाद्य सामग्री तथा अन्य सार्वजनिक कार्यो में प्राप्त आशानुकूल सफलता, औद्योगिक उत्पादनों में हुई वृद्धि आदि के परिणामस्वरूप निसन्देह जनता का जीवन-स्तर ऊँचा उठा है। आज विदेशी सहायता के बिना देश अनेक क्षेत्रों में आत्म-निर्भरता की दिशा में आगे कदम बढ़ा रहा है। फिर भी आम जनता पर आर्थिक संकट अभी भी बना हुआ है। साधारण जनता को जीवनोपयोगी आवश्यक चीज़ वस्तुओं के लिए ऊँचे दाम चुकाने पड़ते है। सरकारी कार्यो के लिए लोगों को अपनी आय का एक बड़ा भाग करों के रूप में चुकाना पड़ता है।बेरोजगारी की समस्या ने नयी पीढ़ी के मानस में भविष्य के प्रति चिंता उत्पन्न की है।दूसरी ओर विदेशों की आर्थिक प्रगति,भौतिक सुख-सुविधाएँ एवं रोजगार के लिए अनेक अवसरों की सम्भावनाओं ने भारतीय युवा पीढ़ी को अपनी ओर आकर्षित किया है।जिससे भविष्य में देश युवा धन की कमी का संकट अनुभव कर सकता है।

देश में आज प्राचीन अर्थव्यवस्था के स्थान पर मुद्रा-प्रमुख अर्थव्यवस्था का प्रभाव बढ़ा है। लोगों के जीवन-स्तर को ऊपर उठाने के प्रयत्न में पूँजीवादी अर्थव्यवस्था को बढ़ावा मिला है।नवीन आर्थिक परिवर्तनो के परिणामस्वरूप सदियों पुरानी सामाजिक व्यवस्था को शिथिल करके आर्थिक स्तरीय आधारवाली नयी सामाजिक व्यवस्था को

जन्म दिया है।[4] आर्थिक सुधारवादी नीतियों के परिणामस्वरूप खाद्य सामग्री के उत्पादन में आत्मनिर्भरता, उद्योग-धन्धों का विकास, असंख्य बेरोजगार व्यक्तियों को जुटाये गये आजीविका के साधन, मशीनी उपकरणों के उत्पादन में हुई वृद्धि, विदेशी बाजारों में भारतीय सामान के निकास में हुई बढ़ौती निश्चित रूप से देश की विकसित आर्थिक व्यवस्था के लक्षण कहे जा सकते हैं। लेकिन आज भी देश आर्थिक दृष्टि से सुदृढ़ एंव पूर्णत: आत्मनिर्भर नहीं है। अनेक घात-प्रत्याघातों से गुजरते हुए देश अपनी आर्थिक विकास की दिशा में अग्रसर है,लेकिन मंजिल अभी भी काफी दूर है।

iii) राजनीतिक परिस्थिति --

दो सो वर्षो की अंग्रेजों की गुलामी की जंजीरो से मुक्त होकर सन् १९४७ ई० में देश ने आज़ादी के सुनहरे सूर्य का दर्शन किया। भारत के इतिहास की यह अद्‌भुत घटना थी। आज़ादी के हर्ष-उल्लास के साथ भारतीय जन-मानस ने देश के विभाजन के व्रजपात की दारुण पीड़ा को भी सहा।पंड़ित जवाहरलाल नेहरू के नेतृत्व में पंचवर्षीय योजनाओं द्वारा देश आत्मनिर्भरता की दिशा में अग्रसर हो ही रहा था कि चीन और पाकिस्तान जैसे पड़ोसी देशो ने सीमान्त आक्रमण करके देश की शान्ति और भाईचारे की नीति को गहरा धक्का पहुँचाया। इसके बावजूद भी विश्व स्तर पर शान्ति के दूत के रूप में भारत को पर्याप्त ख्याति प्राप्त हुई। पंड़ित जवाहरलाल नेहरू की मृत्यु के पश्चात् योग्य नेतृत्व का अभाव सा प्रतीत हो रहा था कि काँग्रेस ने श्रीमती इन्दिरा गाँधी का चयन करके भारत की बागडोर उनके सशक्त हाथों में थमा दी। इन्दिरा गाँधी ने अपनी सूझ-बूझ द्वारा सत्तारूढ़ काँग्रेस की नष्ट हुई लोकप्रियता को पुन: स्थापित किया। उनके प्रगतिशील समाजवादी कार्यक्रमो द्वारा देश ने विज्ञान टेकनोलोजी, अवकाश और नुकलीयर शक्ति के विकास के क्षेत्र में अभूतपूर्व प्रगति की।[5] श्रीमती इन्दिरा गाँधी का यह निरन्तर प्रयास रहा कि इस सदी के अन्त तक में देश तीसरे विश्व का सबसे सशक्त और आत्मनिर्भर लोकतान्त्रिक देश सिद्ध हो।[6] उनके समय में देश के भीतर और बाहर कतिपय शक्तियाँ देश को कमजोर बनाने में प्रयत्नशील रही। पंजाब में फैला आतंकवाद, जम्मु-कश्मीर की घाटीयों में चल रही आतंकवादी प्रवृत्तियाँ, आसाम में उल्फा की गतिविधियाँ तथा तमिलनाडु और पड़ोसी देश श्रीलंका में चल रही एल. टी. टी. ई की विनाशकारी् प्रवृत्तियाँ आदि प्रमुख अलगाववादी समस्याएँ देश के

लिए चुनौती बनकर खड़ी थी। आतंकवाद के व्यापक दुष्परिणाम और विरोधी दलों के अत्यधिक सक्रिय हो जाने पर सन १९७५ ई० में इन्दिरा गाँधी ने सम्पूर्ण भारत में आपात् स्थिति की घोषणा की। इसके अन्तर्गत विरोधी दलों के नेताओं को जेलो में कैद किया गया, प्रेस की स्वतन्त्रता छीन ली गई, परिवार नियोजन और पुनर्वास के नाम पर गरीब जनता पर बलात् अत्याचार किया गया। आपात्कालीन परिस्थितियों में जनता पर की गई जोहुकमी से सन् १९७७ ई० में हुए चुनावों में काँग्रेस की करारी हार हुई। देश के इतिहास में पहली बार काँग्रेस विरोधी जनता पार्टी की भारी बहुमत से चुनाव में जीत हुई। मोरारजी देसाई प्रधानमन्त्री बने लेकिन पार्टी के आपसी मतभेद के कारण शीघ्र ही उन्हें पदत्याग करना पड़ा।इनके पश्चात् श्री चरणसिंह भी अल्पकाल के लिए प्रधानमंत्री बने लेकिन असफल सिद्ध हुए।

काँग्रेस विरोधी पार्टियों के संगठन के असफल होते ही सन् १९८०ई० के मध्यवर्ति चुनावों में पुन: श्रीमती इन्दिरा गाँधी ने काँग्रेस पार्टी को बहुमत से विजयी बनाया। इस दौरान पंजाब में सिखों के द्वारा अलग राज्य के रूप में 'खालीस्तान' की माँग करने वाले आततायी सिखों के एक गिरोह ने अमृतसर के सुवर्णमन्दिर में पनाह लेकर, आये दिन निर्दोष लोगों की जधन्य हत्याओं का एक सिलसिला जारी रखते हुए सरकार पर दबाव लाने का यत्न किया था किन्तु श्रीमती गाँधी जी ने 'ब्ल्यू स्टार आपरेशन' द्वारा उनकी चाल को असफल बनाया। लेकिन इसकी बड़ी भारी किंमत देश को चुकानी पड़ी। अपने ही सुरक्षा के लिए नियुक्त सिख फौजीओं ने उनको गोलीओं से छलनी कर दिया। श्रीमती इन्दिरा गाँधी-जी की मृत्यु के पश्चात् उनके सुपुत्र श्री राजीव गाँधी को काँग्रेस पार्टी के नेतृत्व की बागडोर थमाकर देश के प्रधानमन्त्री पद का गुरूभार सौंपा गया। श्री राजीव गाँधी ने अपनी युवा शक्ति का परिचय देते हुए श्रीमती गाँधी के अधूरे काम को पूरा करने का यत्न किया। लेकिन उनकी राह भी सरल न थी। देश के दक्षिण भाग में श्रीलंका के तमिल मुक्ति व्याधों की बढ़ती हुई गतिविधिओं को असफल बनाने के यत्न में २१ मई १९९१ ई० में एक मानव बम्ब विस्फोट के वे शिकार हुए।[7]

श्री राजीव गाँधी की मृत्यु के पश्चात काँग्रेस पार्टी समर्थ और योग्य नेतृत्व के अभाव में शनै:शनै: प्रभावहीन होकर अपने ही आन्तर कलह से कमजोर और विघटित होने लगी। इन परिस्थितियों का लाभ विरोधी पार्टीयों ने उठाया।[8] कॉग्रेस पार्टी के प्रभावहीन होने से एक बार फिर देश की जनता ने काँग्रेस पार्टी को हरा कर जनता

दल को भारी बहुमत से विजयी बनाया। देश का नेतृत्व श्री वी. पी. सिंह के हाथों में सौंपा गया लेकिन असफल नीतियों तथा पार्टी के आपसी मतभेद के कारण ग्यारह महिने में ही श्री वी. पी. सिंह की सरकार गिर गई।[9] पुनः कॉग्रेस ने गठबन्धन के माध्यम से देश का नेतृत्व श्री नरसिंहमा राव के हाथों में सौंपा। इस दौरान भारतीय जनता पार्टी ने अयोध्या के राममन्दिर की समस्या के निराकरण का मार्ग अपनाते हुए जनता के हृदय में हिन्दू धर्म भावना को उत्तेजित किया। इसका राजनीतिक लाभ उन्हें प्राप्त हुआ और अंतः दूसरे दलो की सहायता एवं संगठन से देश के केन्द्रिय शासन को अपने हस्तगत किया।[10]

सन् १९८९ ई० के पश्चात देश के राजनीतिक क्षेत्र में कतिपय बदलाव के चिन्ह बहुत स्पष्ट और विचारणीय समस्या के रूप में दृष्टिगत होते हैं। प्रथम देश की कोइ भी एक पार्टी सशक्त पार्टी के रूप में उभर कर सामने नहीं आ पायी है। सरकार बनाने के लिए पार्टिओं में जोड़-तोड़ के गठबन्धन की नीतियाँ अपनायी जाने लगी। इसके परिणाम स्वरूप अनेक छोटी-मोटी स्थानीय दलो का राजनीतिक महत्त्व बढ़ने लगा।राज्य सरकार के साथ-साथ केन्द्रीय सरकार भी जोड़-तोड़ की स्वार्थी नीतियों के कारण स्थिर सरकार के रूप में काम करने में समर्थ नहीं हो पायी है। अतःसन् १९९१ ई०. के बाद से देश की राजनीतिक परिस्थितियों में अस्थिरता और अराजकता का रूप दृष्टिगत होने लगा है।

iv) धार्मिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियाँ --

भारतीय सनातन धर्म अपने वैदिक काल से ही जन हिताय और जन सुखाय की कल्याणकारी प्रेरणा से विविधोन्मुखी रहा है। ज्ञान,भक्ति और कर्म के त्रिविध मार्ग को समन्वित करके यह सब के लिए सदा सुलभ और कल्याणकारी रहा है। भारतीय सनातन धर्म की यह प्रमुख विशेषता रही है वह जीवमात्र का आधार बनकर उन्हें उदात्त बनाते हुए शिवत्व में परिणत करने की सामर्थ्यता रखता है। समय-समय पर समकालीन परिस्थितियों के अनुरूप सनातन धर्म, अनेक साम्प्रदायिक स्वरूपों के माध्यम से समाजोन्मुखी बनकर अभिव्यक्त एवं विकसित होता रहा है।

देश के मध्यकाल में भारतीय धर्म साधना का जो उत्कृष्ट रूप सामने आया इससे स्पष्ट है कि देश में असंख्य पौराणिक देवी-देवताओं के प्रति लोगों की आस्था

विद्यमान थी।[11]साथ ही ईसा की पॉचवी-छठी शताब्दी पूर्व से विकसित होने वाले बौद्ध धर्म कालान्तर में अनेक विकृतियों के परिणामस्वरूप लोकधर्म के रूप में अनेक सम्प्रदायों के रूप में दिखाई पड़ता है।[12] इन विविध सम्प्रदायो के मत-मतांतरो एवं आस्थाओं के परिणाम स्वरूप उनमें आपस में टकराव और लोकप्रिय होने की होड़ लगी रहती थी। आ० रामचन्द्र शुक्ल के मतानुसार मुसलमान भारत में आए उस समय सच्चे धर्मभाव का बहुत कुछ ह्रास हो चुका था।[13]देश के उत्तर पश्चिम प्रान्तों से शक,हूण जैसे बर्बर जातियों के लगातार आक्रमण देश की धार्मिक परिस्थिति के लिए झंझावत सिद्ध हो रही थी। सर्वविदित है की देश पर कई सालों तक हुए मुस्लिम आक्रमण, तलवार के बल पर मुस्लिम धर्म के प्रचार और प्रसार हेतु हुए थे। हिन्दू देवी-देवताओं की मूर्तियाँ तोड़ी गई,मन्दिरों को लूटकर उन्हें नष्ट किया गया,पूजारियों की निर्मम हत्याएँ की गई और आम जनता को बलात् धर्म-परिवर्तन के लिए मजबूर किया जाता था। इसके दुष्परिणाम स्वरूप आधुनिक युग तक हिन्दू धर्म और मुस्लिम धर्म परस्पर एक दूसरे से भिन्न धर्म के रूप में अपना अपना विकसित रूप लिए हुए हैं। साथ ही भारतीय वातावरण में दीर्घकालीन सम्पर्क के परिणामस्वरूप आपसी प्रभाव से वे अछूते नहीं रह पाये।उनमें बाहरी विधि-विद्यमान, आस्थाएँ, धार्मिक मान्यताओं आदि का प्रभाव परस्पर एक-दूसरे पर निश्चित रूप से रहा है।

भारत में अंग्रेजों के आगमन के साथ-साथ खिस्ती मिशनरियों द्वारा ईसाई-धर्म-साधना का व्यापक प्रचार और प्रसार हुआ। देश के पिछड़े हुए इलाकों में निर्धन और पीड़ित लोगों की सहायता के बहाने ईसाई धर्म-परिवर्तन की एक व्यवस्थित प्रकृति का जाल बुना गया था जिसके प्रभाव से आज भी देश बच नहीं पाया है। आधुनिक युग में पश्चिमी देशों में एक नई चेतना ने जन्म लिया, ईसाई धर्म संगठन के विरोध में पश्चिमी मानववाद का जन्म हुआ। धर्म और नियति का दामन छोड़कर मनुष्य के व्यक्तित्त्व को पहली बार अभूतपूर्व गौरव मिला। [14] परिणामस्वरूप नास्तिकता और बुद्धिवाद उस समय के युग धर्म थे। १९ वी शताब्दी में पश्चिम के मानववाद और वेदान्तवाद का देश में समन्वय पाया जाता है। राजा राममोहन राय, रामकृष्ण परमहंस, विवेकानंद, पू०गाँधीजी आदि के प्रयत्न से पश्चिमी मानववाद विभिन्न भूमिकाओं, जिनमें वैष्णवधर्मी एवं वेदांती मानववाद,इस्लामी मानववाद,ईसाई मानववाद,वैज्ञानिक मानववाद सर्जनात्मक मानववाद आदि रूपों में विकसित हुआ है।[15] हिन्दी के प्रगतिवादी साहित्य के अविर्भाव के मूल में इन्ही मानवतावादी विचारधारा को देखा जा सकता है। इस

मानवतावादी विचारधारा के स्वरूप का विवेचन करते हुए डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है-"आज नाना स्तरों में वैचित्र्य-संवलित आकार धारण करके एक ही उत्तर मानवचित्त की गम्भीरत्तम भूमिका में निकल रहा है-मानवता ठीक है,पर मुक्ति किसकी ? क्या व्यक्ति मानव की ? नहीं सामाजिक मानवतावाद ही उत्तम साधन है।[16]

भारतीय संस्कृति की सबसे बड़ी विशेषता विविधता में एकता है। प्रत्येक राष्ट्र की संस्कृति उसकी प्राणशक्ति होती है और यही गतिशील प्रकृति का सबसे बड़ा स्त्रोत भी माना जाता है। हमारे देश में अनेक प्रजातियाँ, अनेक जातियॉ-जनजातियाँ तथा कितनी ही भाषाएँ और बोलियाँ है। भारत में विभिन्न देशों-विदेशों से कितने अलग प्रजातियों के लोग आएँ और भारत की मिट्टी में घुलमिल गए। भाषा की दृष्टि से यदि हम भारतवर्ष का आकलन करेंगें तो हम पाएगें कि उसमें कितनी ही भाषाएँ तथा उनकी बोलियाँ-उप-बोलियाँ हैं। भारत मे पन्द्रह भाषाओं को मान्यता प्रदान की गई है। वे भाषाएँ हैं-गुजराती, बंगला, असमिया, बिहारी, राजस्थानी, मराठी, तमिल, तेलगू, कन्नड, मलयालम, पंजाबी उड़िया, सिंधी, उर्दू. इसके अलावा धर्म, रहन-सहन आदि में भी अपार भिन्नताएँ हैं। यद्यपि इतनी विविधताएँ हैं तथापि इन विविधताओं में भी एकता विद्यमान है। यही हमारी संस्कृति का मूल-मंत्र है।

भारत की सांस्कृतिक प्रवृत्ति को विकसित करने में यहाँ के प्रमुख धर्म जैसे हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख, ईसाई, जैन, पारसी आदि सभी का सहयोग रहा है। भारत के विभिन्न धर्मो के लोग एक-दूसरे के उत्सवों के अवसरों पर एक दूसरे का सहयोग करते हैं और उसमें बढ़-चढ़कर भाग लेते हैं। उनमें तब हमें सांस्कृतिक एकता देखने को मिलती है।

भारत की सांस्कृतिक एकता की ओर संकेत करते हुए भारत की पूर्व महिमामयी प्रधानमंत्री स्व०इंदिरा गॉधी जी ने अपने विचार बड़े ही प्रभावकारी ढंग से प्रस्तुत किए--"कोई भी राष्ट्र एक पच्चीकारी की तरह कलाकृति हुआ करता है। तरह-तरह के रंग, तरह-तरह की बनावट, विभिन्न लोग, रीति-रिवाज ये सब बातें मिलकर उस राष्ट्र को एक अद्भुत सौंदर्य प्रदान करके उसे एक शक्तिशाली राष्ट्र बनाती हैं। भारत एक ऐसा राष्ट्र हैं, जहाँ तरह-तरह के लोग, तरह-तरह की वेश-भूषा और खान-पान, विभिन्न धर्म संस्कृतियों और भाषाएँ हैं। हर चीज अलग-अलग होने के बावजूद इस राष्ट्र की विशेषता यह है कि यह भारतीयता की एक अटूट डोर में बंधा हुआ है।"[17]

जब दो संस्कृतियाँ एक-दूसरे के निकट आती हैं तो एक-दूसरे से प्रभावित

हुए बिना नहीं रह पाती। जब भारतीय संस्कृति पाश्चात्य संस्कृति के सम्पर्क में आई तो उसका कायाकल्प ही हो गया। शिक्षित हो जाने से भारतीयों के दृष्टिकोण में परिवर्तन हुआ और उनका दृष्टिकोण वैज्ञानिक हो गया। लोग तर्क-वितर्क करने लगे। वैज्ञानिक दृष्टिकोण हो जाने से लोगों ने धर्मों में विद्यमान त्रुटियों को पहचाना और इन त्रुटियों को सुधारने का प्रयत्न किया जिसमें ब्रह्म-समाज तथा रामकृष्ण मिशन आदि का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा।

सांस्कृतिक दृष्टि से आज देश में बहुत परिवर्तन हुआ है। विवाह, संयुक्त परिवार सम्बन्धी विचारधाराओं का विघटन हो रहा है। अब अन्तर्जातीय सम्बन्धों की और भी लोगों का ध्यान आकर्षित हो रहा है। संयुक्त परिवार भी अब सरल परिवार की ओर धीरे-धीरे बढ़ रहे है। वस्त्रों एवं खान-पान आदि के सम्बन्धों में भी अब लोगों की कट्टरता न के बराबर रह गई है।

कला, नृत्य, संगीत एवं प्राचीन संस्कृति के प्रति भी आज सरकार में जागरूकता दिखाई देती है। सरकारी प्रोत्साहन से देश-विदेश में हमारे सांस्कृतिक कार्यक्रमों के आयोजन द्वारा इसके प्रचार का माध्यम तैयार हो रहा है। दूसरे भारतीय संस्कृति के आध्यात्मिक पक्ष की महत्ता भी आज विदेशों में प्रमाणित होने लगी है। भौतिक वैभव से अधिक मानव-जीवन में शान्ति और सुख की महत्ता ने विदेशियों को इस ओर आकर्षित किया है।

पुरूषप्रधान समाज में नारी का स्थान नाममात्र का ही था उसे केवल भोग्य वस्तु ही समझा जाता था।परन्तु पाश्चात्य संस्कृति,शिक्षा के क्षेत्र में हुई प्रगति एवं समाज सुधारकों के प्रयत्न से नारी प्रगति को बल मिला। उसमें स्वतन्त्रता एवं समानाधिकार की भावनाएँ जागीं।

डॉ० मंजुला गुप्ता के शब्दों में--"स्वातंत्र्योत्तर भारतीय संस्कृति में भी परिवर्तन स्पष्ट लक्षित हैं, बल्कि कहना तो यह चाहिए कि भारतीय संस्कृति भी आधुनिकता के रंग में रंगती जा रही है। उसमें बौद्धिकता का समावेश होता जा रहा है। हमारी संस्कृति प्राचीन परम्पराओं पर निर्भर थी, पर आज परम्पराएँ टूट रहीं हैं, नई आस्था जन्म ले रही है, अतः संस्कृति का भी रूपांतरण स्वयंमेव हो जा रहा है।"[18]

कला संगीत, नाटक, साहित्य आदि की दिशा में भी हमारी सांस्कृतिक परम्परा विकसित हुई है। राष्ट्रीय गीत, राष्ट्रीय चिन्ह, राष्ट्रीय झंडा, राष्ट्रीय-पर्व आदि हमारे भीतर सदा राष्ट्रीय चेतना की प्रेरणा भरते रहे हैं और भरते रहेंगें।

-: संदर्भ सूची :-

MEHTA LIBRARY
Baroda
University

१) डॉ० मदनगोपाल गुप्त - मध्यकालीन हिन्दी काव्य में भारतीय संस्कृति -पृ०. १३६
२) - समकालीन राजनीतिक चिन्तन एवं विश्लेषण -पृ०. २५७
३) सरोज वशिष्ट - का लेख मनोरमा (पत्रिका) अंक अपैल - १९८० -पृ०. ३६
४) डॉ० पी. एम. थॉमस - भारतीय मध्यवर्ग और सामाजिक उपन्यास -पृ०. ५३
५) Satish C. Aggarwala - Legacy of Indira Gandhi
Adish C. Aggarwala 2nd edition -पृ०. ०४
६) वही - वही -पृ०. ०४-०५
७) Prem Shankar Jha - In the ege of the cyclone - The crisis in India democracy -पृ०. ०१
८) वही - वही -पृ०. ०३
९) वही - वही -पृ०. १३
१०) वही - वही -पृ०. १०-११
११) डॉ० अनुराधा दलाल - हिन्दी के भक्तिकाल का पुर्न मुल्यांकन -पृ०. ४१
१२) वही - वही -पृ०. ४१-४२
१३) आ० रामचन्द्र शुक्ल - हिन्दी साहित्य का इतिहास -पृ०. ६४
१४) रामरतन भट्नागर - हिन्दी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास -पृ०. २९४
१५) वही - वही -पृ०. ३०२
१६) डॉ. जयाकिसन प्रसाद खण्डेवाल - हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ -पृ०. ५५४-५५५
१७) हरिवंश तरूण - भारत की राष्ट्रीय एकता -पृ०. ५०
१८) डॉ० अर्जुन चव्हाण - राजेन्द्र यादव के उपन्यासों में मध्यवर्गीय जीवन -पृ०. ६०